विजय के आलोक में

मुनिश्री नथमलजी

प्रकाशक :
आदर्श साहित्य संघ
सरदारशहर (राजस्थान),

प्रकाशकीय

जैन दर्शन अध्यात्म दर्शन है। आत्मा के साम्राज्य पर आक्रमण कर उसके सत् स्वरूप को विजातीय तत्वों से ढकनेवाले राग द्वेष जैसे शत्रुओं को जीतकर स्व-रमण में सन्नद्ध होने का मार्ग यह देता है, बाह्यजगत् के भौतिक घटाटोप के अंधियारे में लड़खड़ाती मानवता को यह वह आलोक देता है, जिसके सहारे वह अपनी मंजिल पर पहुंच, सुख की सांस ले सके।

मुनिश्री नथमलजी द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तिका "विजय के आलोक में" एक ऐसी ही महत्वपूर्ण कृति है। मुनिश्री ने भगवान महावीर के वाङ्मय सागर में से चुन चुन कर उन ज्योतिर्मय रत्नों का अपनी भाषा में सचयन किया है, जिनका आलोक जीवन साधना के पथपर आगे बढ़नेवाले पथिक के लिए प्रकाश स्तम्भ का काम दे सकता है।

जिससे अन्तरतम में जागृति आये, आत्मा अपने सत् स्वरूप को पहचानने की ओर प्रवृत्त हो—आदर्श साहित्य संघ समय-समय पर इस प्रकार का साहित्य प्रकाशित कर अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता रहा है।

प्रस्तुत पुस्तिका जो कलेवर में छोटी पर विचार चिन्तन में काफी बड़ी है, एक इसी कोटि की एक कृति है।

यदि पाठकों ने इससे लाभ उठाया तो हम अपने को कृतार्थ समझेंगे।

सरदारशहर
कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा
सम्वत् २०१३

जयचन्दलाल दफ्तरी
व्यवस्थापक

नि शस्त्रीकरण (शस्त्र-परिज्ञा)

आचार पक्ष

जो आत्मा की चया (विनय चर्या) को नहीं जानता वह दिन चया को भी नहीं जानता।

जीवन की सारी चयाओं का प्रधान स्रोत आत्म चर्या है। उसके दो पक्ष हैं—आचार और विचार। आचार का फल विचार है। विचार का सार आचार है। आचार से विचार का सम्पादन होता है, पोष मिलता है। विचार से आचार को प्रकाश मिलता है।

आचार का प्रधान अग नि शस्त्रीकरण है।

पाषाण युग से अणु-युग तक जितने उत्पीडक और मारक शस्त्रों का आविष्कार हुआ है, व निष्क्रिय शस्त्र (द्रव्य शस्त्र) हैं। उनमें स्वत प्रेरित घातक शक्ति नहीं है।

भगवान् ने कहा—गौतम। सक्रिय शस्त्र (भाव शस्त्र) असयम है। विध्वस का मूल वही है। निष्क्रिय शस्त्रों म प्राण फूकनेवाला भी वही है। उसे भली भाँति समझ कर छोडने का यत्न करना ही नि शस्त्रीकरण है।

नि शस्त्रीकरण का अधिकारी

भगवान् ने कहा—गौतम । मैं पहले कहाँ था ? कहाँ से आया हू ? पहले कौन था ? आगे क्या होऊंगा ? यह सज्ञान जिसे नहीं होता, वह अनात्मवादी है ।

अनात्मवादी नि शस्त्रीकरण नहीं कर सकता ।[१] इन दिशाओं और अनुदिशाओं मे सञ्चारी-तत्त्व जो है, वह म ही हू (सोऽहम्), इसे जाननेवाला आत्मा को जानता है, लोक को जानता है, कर्म को जानता है, क्रिया को जानता है ।

आत्मा को जाननेवाला ही नि शस्त्रीकरण कर सकता है ।[२]

शस्त्रीकरण का परिणाम

शस्त्रीकरण करनेवाला, करानेवाला उसका अनुमोदन करनेवाला एक दिशा से दूसरी दिशा मे पर्यटन करता है। उनके स्थान निम्न होते है —कोई अन्धा होता है तो कोइ काना, कोई बहरा होता है तो कोई मूगा, कोई लुनडा और कोइ बौना, कोई काला और कोई चितकबरा—यू उनका ससार रग बिरगा होता है ।[३]

शस्त्रीकरण के हेतु

भगवान् ने कहा—यह मनुष्य (१) चिरकाल तक जीने के लिये, (२-४) प्रतिष्ठा, सम्मान और प्रशसा के लिए, (५) जन्म-मृत्यु से मुक्त होने के लिए, (६) दु ख मुक्ति के लिए—शस्त्रीकरण करता है ।[४]

अविवेक और विवेक

भगवान् ने कहा—शस्त्रीकरण अविवेक (अपरिज्ञा) है। इसके कटु परिणामों को जानकर जो इसे छोड देता है, वह विवेक (परिज्ञा) है ।[५]

१—आचा १।१।१।१—३ । २—आचा १।१।१।४—७ ।
३—आचा १।१।१।८—९ । ४—आचा० १।१।१।१०—११ ।
५—आचा १।१।१।१२—१३ ।

शस्त्र-प्रयोक्ता

जो प्रमत्त हैं, वे शस्त्र का प्रयोग करते हैं। जो काम भोग के अर्थी है, वे शस्त्र का प्रयोग करते है।[१] भगवान् ने कहा—अपने या पर के लिए या बिना प्रयोजन ही जो शस्त्र का प्रयोग करते है, वे विपदा के भँवर मे फस जाते हैं।

शस्त्र प्रयोग से दूर

जो अपनी पीर जानता है, वही दूसरों की पीर जान सकता है।[२] जो दूसरों की पीर जानता है, वही अपनी पीर जान सकता है।[३]

सुख दुःख की अनुभूति व्यक्ति-व्यक्ति की अपनी होती है। आत्म तुला की यथार्थ अनुभूति हुए बिना प्रत्येक जीव सभी जीवों के 'शस्त्र' (हिंसक) होते हैं।[४]

'अशस्त्र' (अहिंसक) वे ही हो सकते है, जिन्हे साम्य और अभेद म कोई भेद न जान पड़े। भगवान् ने अहिंसा के उच्च शिखर से पुकारा—"पुरुष! देख—जिसे तू मारना चाहता है वह तू ही है, जिस पर तू शासन करना चाहता है, वह तू ही है। जिसे तू कष्ट देना चाहता है, वह तू ही है, जिसे तू अधीन करना चाहता है, वह तू ही है, जिसे तू सताना चाहता है, वह तू ही है।[५]" हन्तव्य और घातक, शासितव्य और शासक मे समता है किन्तु एकत्व नहीं है। कर्त्ता के साथ क्रिया लगी है और उसका परिणाम पीछे लगा आता है। सरल चक्षु से देखता है, वह दूसरों को मारने मे अपनी मौत देखता है, दूसरों को शासित और अधीन करने में अपनी परवशता देखता है, दूसरों को सताने मे अपना सन्ताप देखता है। एक शब्द मे क्रिया की प्रतिक्रिया (अनुसवेदन) देखता है, इसलिए वह किसी को भी मारना व अधीन करना नहीं चाहता।

१—आचा० १।१।४।३५। २—आचा० १।१।७।५७। ३—आचा० १।१।६।,१। ४—आचा० १।३।७।५७। ५—आचा० १।५।५।१६५।

शस्त्रीकरण (पाप) से वे ही बच सकते हैं, जो गम्भीरता (अध्यात्म दृष्टि) पूर्वक शस्त्र प्रयोग में अपना अहित देखते हैं।[1]

जो खेदज्ञ हैं वे ही अशस्त्र का मर्म जानते हैं, जो अशस्त्र का मर्म जानते हैं, वे ही खेदज्ञ हैं।[2]

जो दूसरों की आशंका, भय या लाज से शस्त्रीकरण नहीं करते वे तत्काल दृष्टि (अन् अध्यात्म दृष्टि—बहिर् दृष्टि) हैं। वे समय आने पर शस्त्रीकरण से बच नहीं सकते।[3]

अशस्त्र की उपासना

जो सर्वदा और सर्वथा अशस्त्र है, वही परमात्मा है। अशस्त्रीकरण की ओर प्रगति ही उसकी उपासना है। आत्माएँ अनन्त हैं। वे किसी एक ही विशाल वृक्ष के अवयव मात्र नहीं हैं। सबकी स्वतंत्र सत्ता है।[4]

जो व्यक्ति दूसरी आत्माओं की प्रभु सत्तामें हस्तक्षेप करते हैं, वे परमात्मा की उपासना नहीं कर सकते।

भगवान् ने कहा—सब जीव समता का आचरण ही सत्य है। इसे केन्द्र-बिन्दु मान चलनेवाले ही परमात्मा की उपासना कर सकते हैं।[5]

मित्र और शत्रु

भगवान् ने कहा—पुरुष! बाहर क्या ढूँढ़ रहा है? अन्दर आ और देख - तू ही तेरा मित्र है।[6] ओ पुरुष! तू ही तेरा मित्र और तू ही तेरा शत्रु है[7]। जो किसी का भी अमित्र नहीं, वही अपने आपका

१—आचा० १।१।७।५७। २—आचा १।१।५।३३।

३—आचा० १।३।३।११६। ४—दश ४। ५—आचा० १।४।१।१२७।

६—आचा० १।३।३।११८। ७—उत्त० २०।

मित्र है। जो किसी एक का भी अमित्र है, वह सबका अमित्र है—आत्मा की सर्व सम सत्ता का अमित्र है[1]।

जो आत्मा के अमित्र है, वे परमात्मा की उपासना नहीं कर सकते।

आत्मा और अनात्मा का विवेक

जो जीव को भी नहीं जानता और अजीव को भी नहीं जानता, वह संयम को भी नहीं जानता[2]।

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस—ये छव जीव निकाय है[3]। पुद्गल से बना शरीर अजीव है।

भगवान ने जीव निकाय के जन्म-मृत्यु, गति-आगति, आहार-ज्ञान प्राण आदि का विशाल वर्णन किया।

वनस्पति की मनुष्य जीवन के साथ तुलना

पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु का चैतन्य हेतु गम्य कम है। अधिकांशतया अहेतु गम्य है।

इनकी अपेक्षा वनस्पति का चैतन्य स्पष्ट है, हेतु गम्य है। इसलिये भगवान् ने कहा—जैसे मनुष्य जन्मधर्मा है, वैसे वनस्पति भी जन्मधर्मा है। मनुष्य बढ़ता है, वैसे वनस्पति भी बढ़ती है। मनुष्य में चैतन्य है, वैसे वनस्पति में भी चैतन्य है। काटने पर दोनों म्लान होते है। दोनों आहार करते हैं। दोनों अनित्य और अशाश्वत हैं। दोनों ही कभी कृश और कभी स्थूल होते हैं। दोनों रोगी बनते है, विविध रूपों में बदलते है।[4]

चैतन्य का सूक्ष्म जगत्

जो व्यक्ति सूक्ष्म जीवों का अस्तित्व नहीं मानते, वे अपना अस्तित्व भी नहीं मानते। जो अपना अस्तित्व नहीं मानते है, वे ही सूक्ष्म जीवों

१—छ सु अन्नयरम्मि कप्पइ। आचा० १।२।६।२८। २—दश ४।

३—सूत्र० १।४।७६। [illegible]

का अस्तित्व नहीं मानते। वे अनात्मवादी हैं। आत्मवादी ऐसा नहीं करते। वे जैसे अपना अस्तित्व मानते हैं, वैसे ही सूक्ष्म जीवों का अस्तित्व भी मानते हैं[1]।

चैतन्य के सूक्ष्म जगत् की गणना

मिट्टी का एक ढेला, जल की एक बूंद, अग्नि का एक कण, पीपल को हिला सके, इतनी सी वायु में असंख्य जीव हैं। सुई की नोक टिके, इतनी वनस्पति में असंख्य या अनन्त जीव हैं।

ज्ञान और वेदना (अनुभूति)

जीव के दो विशेष गुण हैं—ज्ञान और वेदना (सुख-दुःख की अनुभूति)।

अमनस्क (जिनके मन नहीं होता, उन) जीवों का ज्ञान अस्पष्ट होता है, वेदना स्पष्ट होती है[2]।

समनस्क (जिनके मन होता है, उन) जीवों का ज्ञान और वेदना दोनों स्पष्ट होते हैं[3]।

भगवान् ने विशाल ज्ञान चक्षु से देखा और कहा—गौतम ! इन छोटे जीवों में भी सुख-दुःख की संवेदना है[4]।

अहिंसा का सिद्धान्त

प्राणी मात्र को जीना प्रिय है, मौत अप्रिय, सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय। इसलिये मतिमान मनुष्य को किसी का प्राण न लूटना चाहिए[5]।

जीव-वध न करना ही ज्ञानी के ज्ञान का सार है और यही अहिंसा का सिद्धान्त है[6]।

१—आचा १।१।३।२३। २—सूत्र० वृत्ति २।२। ३—सूत्र० वृत्ति २।२।
४—आचा० १।१।२।१७। ५—सूत्र० १।११।९। ६—सूत्र० १।११।१०।

हिंसा चोरी है

सूक्ष्म जीव अपने प्राण लूटने की स्वीकृति कब देते हैं ? जो व्यक्ति बलात् उनके प्राण लूटते हैं, वे उनकी चोरी करते हैं[1]।

निःशस्त्रीकरण की आधारशिला—सब जीव समान हैं

(क) परिमाण की दृष्टि से —

जीवों के शरीर भले छोटे हों या बड़े, आत्मा सब में समान है। चींटी और हाथी—दोनों की आत्मा समान है[2]।

भगवान ने कहा—गौतम ! चार वस्तुएँ समतुल्य हैं—आकाश (लोकाकाश), गति सहायक तत्त्व (धर्म), स्थिति-सहायक तत्त्व (अधर्म) और एक जीव—इन चारों के अवयव बराबर हैं[3]। तीन व्यापक हैं। जीव कर्म शरीर से बंधा हुआ रहता है, इसलिये वह व्यापक नहीं बन सकता। उसका परिमाण शरीर-व्यापी होता है। शरीर—मनुष्य, पशु पक्षी—इन जातियों के अनुरूप होता है। शरीर भेद के कारण प्रसरण भेद होने पर भी जीव के मौलिक परिमाण में कोई न्यूनाधिक्य नहीं होता। इसलिए परिमाण की दृष्टि से सब जीव समान हैं।

(ख) ज्ञान की दृष्टि से —

मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति का ज्ञान सब से कम विकसित होता है। ये एकेन्द्रिय हैं। इन्हें केवल स्पर्श की अनुभूति होती है। इनकी शारीरिक दशा दयनीय होती है। इन्हें छूने मात्र से अपार कष्ट होता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, अमनस्क पचेन्द्रिय, समनस्क-पचेन्द्रिय—ये जीवों के क्रमिक विकास शील वर्ग हैं। ज्ञान का विकास सब जीवों में समान नहीं होता किन्तु ज्ञान शक्ति सब जीवों में समान होती है। प्राणी मात्र में अनन्त ज्ञान का सामर्थ्य है, इसलिए ज्ञान-सामर्थ्य की दृष्टि से सब जीव समान हैं।

१—आचा १।१।३।२७। २—रान ४७। ३—स्था ४।३।३३४।

(ग) वीर्य की दृष्टि से —

कई जीव प्रचुर उत्साह और क्रियात्मक वीर्य से सम्पन्न होते हैं तो कई उतने धनी नहीं होते। शारीरिक तथा पारिवारिक साधनों की न्यूनाधिकता व उच्चावचता के कारण ऐसा होता है। आत्म-वीर्य या योग्यतात्मक वीर्य में कोई न्यूनाधिक्य व उच्चावचत्व नहीं होता, इसलिए योग्यतात्मक वीर्य की दृष्टि से सब जीव समान हैं।

(घ) अपौद्गलिकता की दृष्टि से —

किन्हीं का शरीर सुन्दर, जन्म स्थान पवित्र व व्यक्तित्व आकर्षक होता है और किन्हीं का इसके विपरीत होता है।

कई जीव लम्बा जीवन जीते हैं, कई छोटा, कई यश पाते हैं और कई नहीं पाते या कुयश पाते हैं, कई उच्च कहलाते हैं और कई नीच, कई सुख की अनुभूति करते हैं और कई दुःख की। ये सब पौद्गलिक उपकरण हैं। जीव अपौद्गलिक है, इसलिये अपौद्गलिकता की दृष्टि से सब जीव समान हैं।

(ङ) निरुपाधिक स्वभाव की दृष्टि से —

कई व्यक्ति हिंसा करते हैं—कई नहीं करते कई झूठ बोलते हैं—कई नहीं बोलते, कई चोरी और संग्रह करते हैं—कई नहीं करते, कई वासना में फसते हैं—कई नहीं फसते। इस वैषम्य का कारण मोह (मोह पुद्गलों) का उदय व अनुदय है। मोह के उदय से व्यक्ति में विकार आता है। हिंसा झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह ये विकार (विभाव) हैं। मोह के अनुदय से व्यक्ति स्वभाव में रहता है—अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह स्वभाव है। विकार औपाधिक होता है। निरुपाधिक स्वभाव की दृष्टि से सब जीव समान हैं।

(च) स्वभाव बीज की समता की दृष्टि से —

आत्मा परमात्मा है। पौद्गलिक उपाधियों से बंधा हुआ जीव

ससारी आत्मा है। उनसे मुक्त जीव परमात्मा है। परमात्मा के आठ लक्षण है —

(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त-दर्शन, (३) अनन्त-आनन्द, (४) अनन्त पवित्रता (५) अपुनरावर्तन, (६) अमूर्तता अपौद्गलिकता, (७) अगुरु लघुता—पूर्ण साम्य, (८) अनन्त शक्ति।

इन आठो के बीज प्राणीमात्र म सममात्र होते है। विकास का तारतम्य होता है। विकास की दृष्टि से भेद होते हुए भी स्वभाव बीज की साम्य दृष्टि से सब जीव समान है।

यह आत्मौपम्य या सर्व जीव-समता का सिद्धान्त ही नि शस्त्रीकरण की आधार-शिला है।

घर और घर का त्याग
(सत्य की आराधना)

एक दिन यह घर, घर ही था और कुछ नहीं। जिसे शाश्वत घर मे विश्राम नहीं, वही नश्वर घर का निर्माता है[1]—इस घोष ने घरका भाग्य बदल दिया। अब पार्थिव घर जन्म और मौत के मध्य का विश्रान्ति-स्थलमात्र रह गया।

भगवान् ने कहा—गौतम! जिसका घर ऊँचा है, उसका घर दूर है। जिसका घर दूर है उसका घर ऊचा है। तू चलता चल तेरा घर अभी दूर है[2]।

विजय का साथ लिए चल, श्रेय अभी दूर है[3]।

यह लब्ध घर अनादि सहचर है। जो लभ्य है, वह कभी नहीं मिला। मिलन के पश्चात् वह कभी नहीं छूटता।

यह घर बन्धन का प्रतीक है, द्वन्द्व का प्रतीक है, अकेला है—यह

१—उत्त ९।२६। २—आचा १।३।३।११९।

३—सहिओ धम्ममादाय सेय समणुपस्सइ—आचा० १।३।३।११९।

गृहस्थ नहीं है। गृहस्थी उसी की है जो दो हैं। एक दूसरे से बन्धा हुआ है।

जो एक घर है, वहाँ बन्धन भी नहीं है। द्वन्द्व भी नहीं है। बन्धन में रहकर मुक्ति की साधना नहीं की जा सकती। द्वन्द्व में रह कर निर्द्वन्द्व नहीं साधा जा सकता।

इस घर में रहने वाले मन्दद्व शील होते हैं। वे खुले नहीं रह जाते। राग और द्वेष—ये दो बेड़ियां हैं। वे इनसे बन्धे रहते हैं। यहाँ शरीर और उसके परिणाम—दोनों हैं।

वैषम्य भी है और उसके हेतु भी है।
जन्म भी है और मौत भी है।
जवानी भी है और बुढ़ापा भी है।
सुख भी है और दुःख भी है।
स्वीकरण भी है और उत्सर्ग भी है।

यहाँ अपौद्गलिक और पौद्गलिक का द्वन्द्व है। यह मिथ्या दृष्टि का घर है, वह द्वन्द्व को नहीं जानता। यह अव्रती का घर है, वह द्वन्द्व को छोड़ना नहीं चाहता। यह प्रमादी का घर है, वह द्वन्द्व के शयनालय को छोड़ना नहीं चाहता।

यह अवीतराग का घर है, वह द्वन्द्व की चित्रशाला के बाहर निकलना नहीं चाहता।

यह सयोगी का घर है, वह द्वन्द्व के चलचित्र से दूर होना नहीं चाहता।

अकेले (ज्ञानी) का घर निराला है, वहाँ द्वन्द्व नहीं है। जो द्वन्द्व से डरता है, वही अकेला बनता है। जो आतंक से डरता है, वही अकेला बनता है[1]।

१—आयक दसी न करेइ पाव। आचा १।३।२। गाथा ७।

उसके घर मे पाप और पुण्य की ईंटो से वना हुआ आलय है। जो मौत से टरता है वही अकेला वनता है[१]।

उसके जन्म और मौत के प्रवेश द्वार वाला आलय नहीं है। जो दु ख से डरता है वही अकेला बनता है। उसके घर मे सुख और दु ख की भूल भुलैया नहीं है।

जो बन्धन से डरता है, वही अकेला वनता है। उसके तोरण द्वार राग द्वेष की वन्दन मालाओं से सजे हुए नहीं हैं।

एकत्व से द्वन्द्व या बहुत्व की ओर गति है, वह घर है। द्वन्द्व या बहुत्व से एकत्व की ओर गति है, वह घर का त्याग है।

अकेला वह वनता है जो मम है। उसके घर म भूगृह व अट्टालिकाएँ नहीं है।

अकेला वह है जो विदह है। उसके वहाँ देह और उसके परिणाम नहीं हैं।

गौतम ने पूछा—भगवन् ! गृह वास असार है, गृह-त्याग सार है—यह जानकर भला घर म कौन[२] रहे ?

भगवान् ने कहा—गौतम ! जो प्रमत्त हो वही रहे और कौन रहे[३]। प्रमत्त वह है जो अज्ञानी है, प्रमत्त वह है जो सशय शील है, प्रमत्त वह है जा आसक्त है।

घर में वह रहता है जो गृह वास के कटु विपाक को नहीं जानता। घर मे वह रहता है, जो अपने भविष्य क प्रति सन्देह शील है। घर म वह रहता है, जो भोग मे आसक्त है[४]।

१—माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ। आचा० ११३।३।११ ।

२—को गार मावसे ? (सूत्र २।२।१)

३—पमत्ते हि गार मावसे तहिं। (आचा० ११ ।३।१५६)।

४—उत्त १४।७।

भगवान ने कहा—त्याग की श्रुति, श्रद्धा और आचरण क्रमश दुर्लभ, दुलभतर और दुर्लभतम है[१]।

त्याग

भगवान् न कहा—वह गाम भी नहीं है, घर भी नहीं है[२], भोगी भी नहीं है, त्यागी भी नहीं है। भोग छोडा, आसक्ति नहीं छोडी—वह न भोगी है न त्यागी। भोगी इसलिए नहीं कि वह भोग नहीं भोगता। त्यागी इसलिए नहीं कि वह भोग की वासना नहीं त्याग सका। पराधीन होकर भोग का त्याग करनेवाला त्यागी नहीं है। त्यागी वह है जो स्वतत्र चेतनापूर्वक भोग से दूर रहता है[३]। कई भिक्षुओं से गृहस्थ श्रेष्ठ है। सब गृहस्थो से भिक्षु श्रेष्ठ है[४]। श्रेष्ठता व्यक्ति नहीं, सयम है। वह घर म रहकर भी धम के आदेशो का अनुगमन करते हैं और घर को त्यागनेवाले तो वैसा करते ही है किन्तु घरको त्यागकर भी धर्म के आदर्शों का अनुगमन न करे वह पछताता है[५]। इसीलिए भगवान ने कहा—गृह त्यागी असयमी से अल्प-सयमी गृहवासी श्रेष्ठ है और उससे गृहत्यागी सयमी श्रेष्ठ है।

इन्द्र ने कहा—राजर्षि! गृह वास श्रेष्ठ आश्रम है। उसे छोड दूसरे आश्रम मे जाना उचित नहीं। आप यहीं रहकर धर्म पोषक कार्य करें।

राजर्षि ने उत्तर दिया—ब्राह्मण! मास-मास का उपवास करने वाला और पारणा[६] मे कुशाग्र नोक पर टिके उतना स्वल्प आहार खानेवाला गृहस्थ सयम (मुनि धर्म) की सोलहवीं कला की तुलना मे

१—उत्त ३।८।१०। २—आचा० १।५।१।१४२।
३—दश० २।२ ३। ४—उत्त० ५।२०।
५—आचा० १।५। ।१६२। ६—उपवास तोड़ने का दिन।

भी नहीं आता[1]। गृह त्याग का तात्पर्य सयमी जीवन या साधना का सतत प्रवाह है। गृह वास का तात्पर्य असयमी जीवन या असाधना का भाव है।

ये दोनों दो दिशाओं के दो छोर है।

धर्म, अहिंसा या समता जो है वह जीवन का धर्म है। गृहवासी भी सब एक सरीखे नहीं होते, गृह त्यागी भी सब सरीखे नहीं होते। दु शील साधु अपने को दुर्गति से नहीं बचा पाता[2]। शील (व्रत) की आराधना करनेवाले गृहस्थ और भिक्षु—दोनों स्वर्ग मे जाते है[3]।

सयम और तप का अनुशीलन करनेवाले, शान्त रहनेवाले भिक्षु और गृहस्थ का अगला जीवन भी तेजोमय होता है[4]।

समता धर्म को पालनेवाला, श्रद्धाशील और शिक्षा समापन्न गृहस्थ घर मे रहता हुआ भी मौत के बाद स्वर्ग मे जाता है[5]।

साधना सम्पन्न भावितात्मा, स्थितात्मा और सवृत अणगार (गृहत्यागी) स्वर्ग मे जाता है या सब दोषों से सदा मुक्त बन जाता है[6]।

साधना का मान दड

भगवान् ने कहा—गौतम। साधना के क्षेत्र मे व्यक्ति के अपकर्ष-उत्कर्ष या अवरोह आरोह का मानदण्ड सवर—विजातीय-तत्त्व का निरोध है।

सयम और आत्म स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति का चरम-बिन्दु एक है। पूर्ण सयम यानि असयम का पूर्ण अन्त, असयम का पूर्ण अन्त यानि आत्मा का पूर्ण विकास।

१—उत्त० ६।४४। २—उत्त० ५।२१ २२।

३—उत्त ५।२२। ४—उत्त ५।२६ २८। ५—उत्त० ५।२३ २४।

६—उत्त ५।३५—गारं पि अ आवसे—सुत्र० १२। ।१३।

जो व्यक्ति भोग तृष्णा का अन्तकर है, वही इस अनादि दुःख का अन्तकर है[1]।

दुःख के आवर्त में दुःखी ही फँसता है, अदुःखी नहीं[2]। उस्तरा और चक्र अन्त भाग से चलते हैं। जो अन्त भाग से चलते हैं वे ही साध्य को पा सकते हैं।

विषय, कषाय और तृष्णा की अन्तरेखा के इस पार जिनका पहला चरण टिकता है, वे ही अन्तकर मुक्त बनते हैं[3]।

अहिंसा और आकिञ्चन्य

दो स्थान—हिंसा (आरम्भ) और परिग्रह को जाने बिना और त्यागे बिना कोई भी जीव—

पूर्ण बोधि
पूर्ण गृह त्याग
पूर्ण ब्रह्मचर्य वास
पूर्ण संयम
पूर्ण-संवर
पूर्ण ज्ञान—नहीं पा सकता[4]।

जो ममायित—मति को त्यागता है, वही ममायित को त्याग सकता है।

अधिकार की वृत्ति को त्यागनेवाला ही अधिकार को त्याग सकता है, संग्रह की मूर्च्छा को त्यागनेवाला ही संग्रह को त्याग सकता है।

वह पथ पा चुका जिसके पास परिग्रह नहीं है अथवा जिसके पास परिग्रह नहीं है वही पथ द्रष्टा है[6]।

यह पुरुष अनेक-चित्त है, चलनी को जल से भरना चाहता है[7]।

१—सूत्र १।१५।१७। २—भग ७।१। ३—सूत्र १।१४।१६।
४—स्था २।१।६४। ५—आचा १।२।६।९९।
६—आचा० १।२।६।९९। ७—आचा० १।३।२।११४।

मनुष्य दूसरा को मारता है, सताता है, अपने अधीन करता है ग्मका कारण तृष्णा है।

एक मनुष्य जन पद को मारता है, सताता है, अपने अधीन करता है ग्मका कारण भी तृष्णा है[१]।

जो तृष्णा के अधीन है। वह दुखी है। बगुला अण्डे से और अण्डा बगुले से पैदा होता है वैसे ही मोह-तृष्णा से और तृष्णा मोह से पैदा होती है[२]।

जिसके मोह नहीं, उसने दुःख का अन्त कर डाला। जिसके तृष्णा नहीं, उसने मोह का अन्त कर डाला।

जिसके लोभ नहीं, उसने तृष्णा का अन्त कर डाला। जो अकिंचन है, उसने लोभ का अन्त कर डाला[३]।

जो अलोभ है उसने सर्वस्व पा लिया।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य भगवान् है[४]।

ब्रह्मचर्य सब तपस्याओं में प्रधान है[५]। जिसने ब्रह्मचर्य की आराधना करली उसने सब व्रतों को आराध लिया[६]। जो अब्रह्मचर्य से दूर हैं—वे आदि मोक्ष हैं। मुमुक्षु मुक्ति के अग्रगामी[७] हैं। ब्रह्मचर्य के भग्न होने पर सारे व्रत टूट जाते हैं[८]।

१—आचा० १।३।२।११४। २—उत्त० ३२ ६।

३—उत्तरा ३२।८। ४—तं बंभं भगवंत (प्रश्न० ? ४)।

५—तवेसु वा उत्तम बंभचेरं सूत्र १।६।२३।

६—जम्मिय आराहियम्मि आराहियं वयमिण सव्वं—प्रश्न० २ ४।

७—इत्थिओ जेण सेवन्ति आइमोक्खा उत्तेजणा—सूत्र० १।१५।९।

८—जम्मिय भग्गम्मि होइ सहसा सव्वं संभग्गं—प्रश्न ?।४।

ब्रह्मचर्य जितना श्रेष्ठ है उतना ही दुष्कर है[१]। इस आसक्ति को तरनेवाला महासागर को तर जाता है[२]।

कहीं पहले दण्ड, पीछे भोग है, और कहीं पहले भोग, पीछे दण्ड है—ये भोग संगकारक हैं[३]। इन्द्रिय के विषय विकार के हेतु हैं किन्तु वे राग द्वेष को उत्पन्न या नष्ट नहीं करते। जो रक्त और द्विष्ट होता है वह उनका संयोग पा विकारी बन जाता है[४]। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए विकार के हेतु वर्जनीय हैं। ब्रह्मचारी की चर्या यूँ होनी चाहिये —

(१) एकान्त वास—विकार वर्धक सामग्री से दूर रहना।
(२) कथा-संयम—कामोत्तेजक वार्तालाप से दूर रहना।
(३) परिचय संयम—कामोत्तेजक सम्पर्कों से बचना।
(४) दृष्टि-संयम—दृष्टि के विकार से बचना।
(५) श्रुति-संयम—कर्ण विकार पैदा करनेवाले शब्दों से बचना।
(६) स्मृति संयम—पहले भोगे हुए भोगों की याद न करना।
(७) रस संयम—पुष्ट हेतु के बिना सरस पदार्थ न खाना।
(८) अति भोजन-संयम (मिताहार)—मात्रा और संख्या में कम खाना, बार बार न खाना, जीवन निर्वाह मात्र खाना।
(९) विभूषा संयम—शृंगार न करना।
(१०) विषय संयम[५]—मनोज्ञ शब्दादि इन्द्रिय विषयों तथा मानसिक संकल्पों से बचना।
(११) भेद चिन्तन—विकार हेतुक प्राणी या वस्तु से अपने को पृथक् मानना।
(१२) सी और ताप सहना—ठंडक में खुले बदन रहना, गर्मी में सूर्य का आतप लेना।

१—नेयारिसं दुत्तरं मत्थि लोए—उत्त ३२।१७। २—उत्त ३२।१८।
३—आचा ११।४।१६। ४—उत्त० ३२।३११। ५—उत्त० १६।

(१३) सौकुमार्य-त्याग।

(१४) राग-द्वेष के विलय का संकल्प करना[1]।

(१५) गुरु और स्थविर से मार्ग-दर्शन लेना।

(१६) अज्ञानी या आसक्त का संग-त्याग करना।

(१७) स्वाध्याय में लीन रहना।

(१८) ध्यान में लीन रहना।

(१९) सूत्रार्थ का चिन्तन करना।

(२०) धैर्य रखना, मानसिक चंचलता होने पर निराश न होना[2]।

(२१) शुद्धाहार—निर्दोष और मादक वस्तु-वर्जित आहार।

(२२) कुशल साथी का सम्पर्क[3]।

(२३) विकार पूर्ण-सामग्री का अदर्शन, अप्रार्थन, अचिन्तन, अकीर्तन[4]।

(२४) काय क्लेश—आसन करना, स्नान सज्जा न करना।

(२५) ग्रामानुग्राम-विहार—एक जगह अधिक न रहना।

(२६) रूखा भोजन—रूखा आहार करना।

(२७) अनशन[5]—यावज्जीवन आहार का परित्याग कर देना।

(२८) विषय की नश्वरता का चिन्तन करना[6]।

(२९) इन्द्रिय का बहिर्मुखी व्यापार न करना[7]।

(३०) भविष्य दर्शन—भविष्य में होनेवाले विपरिणाम को देखना[8]।

(३१) भोग में रोग का संकल्प करना[9]।

१—दश० २।४।५ उत्त० ३२।२१। २—उत्त ३२।३।
३—उत्त ३२।४। ४—उत्त० ३२।१५। ५—आचा १।८।४।१-०।
६—दश० ८।५९। ७—उत्त ३२।१२। ८—सूत्र० १।३।४।१६।
९—सूत्र १।२।३।२।

(३२) अप्रमाद —सदा जागरूक रहना—जो व्यक्ति विकार-हेतुक सामग्री को उच्च मान उसका सेवन करने लगता है, उसे पहले ब्रह्मचर्य मे शका उत्पन्न होती है फिर क्रमश आकाक्षा (कामना), विचिकित्सा (फल के प्रति सन्देह), द्विविधा, उन्माद और ब्रह्मचर्य नाश हो जाता है[१]।

इसलिए ब्रह्मचारी को पल पल सावधान रहना चाहिये। वायु जैसे अग्नि ज्वाला का पार कर जाता है – वैसे ही जागरूक ब्रह्मचारी काम भोग की आसक्ति का पार कर जाता है[२]।

अस्तेय

अपने अधिकारों म रमण करना विजय है।

दूसरो के अधिकारो को लेने का प्रयत्न करना पराजय है।

अस्तेय आत्मा की विजय है, स्तेय पराजय।

चोरी वह करता है, जो रूप से पराजित है।

चोरी वह करता है, जो परिग्रह से पराजित है।

चोरी वह करता है, जो असन्तोष से दु खी है[३]।

यह दु ख मुक्ति का उपाय नहीं है। दु ख मुक्ति का उपाय है स्वात्म रमण।

अहिंसा का अर्थ है—	आत्म रमण।
सत्य का अर्थ है—	आत्म रमण।
अस्तेय का अर्थ है—	आत्म रमण।
ब्रह्मचर्य का अर्थ है—	आत्म रमण।
अपरिग्रह का अर्थ है—	आत्म रमण।

एक शब्द मे—जैन दर्शन का अर्थ है—आत्म रमण।

१—उत्त० १६।

२—वाऊव जालमच्चेइ पिया लोगमि इत्थिओ   सूत्र० १।१५।८।

३—उत्त ३२।२९।

विचार पक्ष

(विश्व-दर्शन)

भगवान् ने कहा—पुरुष ! तू सत्य की आराधना कर। सत्य की आराधना करनेवाला मौत को तर जाता है। जो मौत से परे (अमृत) है वही श्रेयस् है[१]।

जो नश्वरता की ओर पीठ किये चलता है वह श्रेयोदर्शी (अमृत-गामी) है, जो श्रेयोदर्शी है वही नश्वरता की ओर पीठ किए चलता है[२]।

गौतम ! मैंने दो प्रकार की प्रज्ञाओं का निरूपण किया है—

(१) ज्ञ प्रज्ञा (२) प्रत्याख्यान प्रज्ञा।

ज्ञ प्रज्ञा का विषय समूचा विश्व है। जितने द्रव्य हैं वे सब ज्ञेय हैं।

द्रव्य छह हैं—(१) धर्म अस्तिकाय (२) अधर्म अस्तिकाय (३) आकाश अस्तिकाय (४) काल (५) पुद्गल अस्तिकाय (६) जीव-अस्तिकाय।

गौतम भगवन् ! गति सहायक तत्त्व (धर्मास्तिकाय) से जीवों को क्या लाभ होता है ?

भगवान—गौतम ! गति का सहारा नहीं होता तो कौन आता और कौन जाता ? शब्द की तरंगें कैसे फैलतीं ? आँख कैसे खुलती ? कौन मनन करता ? कौन बोलता ? कौन हिलता-डुलता ?—यह विश्व अचल ही होता। जो चल है उन सबका आलम्बन गति-सहायक तत्त्व ही है[३]।

गौतम—भगवन् ! स्थिति सहायक तत्त्व (अधर्मास्तिकाय) से जीवों को क्या लाभ होता है ?

१—आचा १।३।३।११२। २—आचा १।३।१११२।

३—भग० १३।४।

भगवान्—गौतम! स्थिति का सहारा नहीं होता तो खड़ा कौन रहता? कौन बैठता? सोना कैसे होता? कौन मन को एकाग्र करता? मौन कौन करता? कौन निष्पन्द बनता? निमेष कैसे होता? यह विश्व चल ही होता। जो स्थिर है उन सबका आलम्बन स्थिति सहायक तत्त्व ही है[1]।

गौतम—भगवन्! आकाश तत्त्व से जीवों और अजीवों को क्या लाभ होता है?

भगवान—गौतम! आकाश नहीं होता तो—ये जीव कहाँ होते? ये धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय कहाँ व्याप्त होते? काल कहाँ बरतता? पुद्गल का रंगमंच कहाँ बनता?—यह विश्व निराधार ही होता[2]।

गौतम—भगवन्! जीव का क्या कार्य है?

भगवान्—गौतम! जीव नहीं होता तो—कौन उत्थान करता? कौन कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार—पराक्रम करता? यह उत्थान जीव की सत्ता का प्रदर्शन है। यह कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार—पराक्रम जीव की सत्ता का प्रदर्शन है। कौन ज्ञानपूर्वक क्रिया में प्रवृत्त होता? यह विश्व अचेतन ही होता, ज्ञानपूर्वक कुछ भी नहीं होता। ज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति और निवृत्ति है—वह जीव की सत्ता का प्रदर्शन है[3]।

गौतम—भगवन्! पुद्गल का क्या कार्य है?

भगवान—गौतम! पुद्गल नहीं होता तो शरीर किसका बनता? विविध क्रिया करनेवाला शरीर किससे बनता? विभूतियों का निमित्त कौन होता? कौन तेज पाचन और दीपन करता? सुख दुःख की अनुभूति और व्यामोह का साधन कौन बनता? शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और इनके द्वार—कान, आँख, नाक, जीभ और चर्म कौन

१—भग० १३।४। २—भग० १३।४। ३—भग० १३।४, २।१०।

बनते ? मन, वाणी और स्पन्दन का निमित्त कौन बनता ? श्वास और उच्छ्वास कौन होता ? अन्धकार और प्रकाश नहीं होते, आहार और विहार नहीं होते, धूप और छाँह नहीं होती, कौन छोटा होता, कौन बड़ा ? कौन लम्बा होता कौन चौड़ा ? त्रिकोण और चतुष्कोण नहीं होते। वर्तुल और परिमण्डल भी नहीं होते। संयोग और वियोग नहीं होते—सुख और दुःख, जीवन और मृत्यु नहीं होते। यह विश्व अदृश्य ही होता[1]।

गति—लक्षण जो है वह धर्मास्तिकाय है।

स्थिति—लक्षण जो है वह अधर्मास्तिकाय है।

अवगाह—लक्षण जो है वह आकाशास्तिकाय है।

उपयोग[2]—लक्षण जो है वह जीव है।

ग्रहण[3]—लक्षण जो है वह पुद्गल है[4]।

जहाँ गति, स्थिति, अवकाश, उपयोग और ग्रहण की परस्पर—सापेक्षता है वही लोक या विश्व है। परिवर्तन विश्व का स्वभाव है। परिवर्तन का हेतु काल है। वस्तु सत्ता की दृष्टि से यह विश्व शाश्वत, अनादि, अनन्त है।

सत्तागत परिवर्तन की दृष्टि से यह विश्व अशाश्वत सादि—सान्त है।

भगवान् ने कहा—गौतम ! विश्व की व्यवस्था उसी के अंगों में समाहित है।

स्वभाव का परिवर्तन सतत होता है, किन्तु वैभाविक परिवर्तन केवल जीव और पुद्गल का ही होता है। दृश्य तत्त्व पुद्गल ही है। जो दृश्य जगत् है वह जीव सगृहीत पुद्गल या जीव मुक्त पुद्गल

१—भग० १३।४। २—चैतन्य की प्रवृत्ति।

३—ग्रहण विषय केवल पुद्गल का ही होता है। ४—भग० १३।४।

समूह है। विश्व में जो कुछ होता है वह सम्भाव्य ही होता है। असम्भव की सृष्टि नहीं होती।

ये छह कार्य सर्वथा असम्भव हैं —

(१) जीव का अजीव करण।

(२) अजीव का जीव-करण।

(३) एक साथ दो भाषाएं बोलना।

(४) पूर्वकृत कर्म के भोग की स्वतन्त्रता।

(५) परमाणु का छेदन भेदन, दाह आदि।

(६) अलोक गमन[1]।

प्रत्याख्यान—प्रज्ञा का विषय विजातीय द्रव्य (पुद्गल द्रव्य) और उसकी संग्राहक प्रवृत्तियां हैं। जीव और अजीव—ये दो मूलभूत तत्त्व हैं। विजातीय द्रव्य के संग्रह की संज्ञा बंध है। उसकी विपाक-दशा का नाम पुण्य और पाप हैं।

विजातीय द्रव्य की संग्राहक प्रवृत्ति का नाम 'आस्रव' है।

विजातीय द्रव्य के निरोध की दशा का नाम 'संवर' है।

विजातीय द्रव्य को क्षीण करनेवाली प्रवृत्ति का नाम 'निर्जरा' है।

विजातीय द्रव्य की पूर्ण—प्रत्याख्यान दशा 'मोक्ष' है।

ज्ञ—प्रज्ञा की दृष्टि से द्रव्य मात्र सत्य है।

प्रत्याख्यान—प्रज्ञा की दृष्टि से मोक्ष और उसके साधन 'संवर' और 'निर्जरा'—ये सत्य हैं।

सत्य के ज्ञान और सत्य के आचरण द्वारा स्वयं सत्य बन जाना यही मेरे दर्शन—जैन दर्शन या सत्य की उपलब्धि का मर्म है।

लोकसार

गौतम—भगवन्! जीवन का सार क्या है?

भगवान्—गौतम! जीवन का सार है—आत्म-स्वरूप की उपलब्धि।

१—स्था० ६।३।४७९।

गौतम—भगवन्! उसकी उपलब्धि के साधन क्या हैं?

भगवान्—गौतम! अन्तर-दर्शन, अन्तर ज्ञान और अन्तरविहार[1]।

जीवन का सार क्या है? यह प्रश्न आलोचना के आदिकाल से चर्चा जा रहा है।

विचार सृष्टि के शैशव काल में जो पदार्थ सामने आया, मन को भाया वही सार लगने लगा। नश्वर सुख के पहले स्पर्श ने मनुष्य को मोह लिया। वही सार लगा। किन्तु ज्योंही उसका विपाक हुआ, मनुष्य चिल्लाया—सार की खोज अभी अधूरी है—आपात भद्र और परिणाम विरस जो है वह सार नहीं है, क्षण भर सुख दे, चिरकाल तक दुःख दे, वह सार नहीं है, थोड़ा सुख दे अधिक दुःख दे, वह सार नहीं है[2]।

बहिर्-जगत् (दृश्य या पौद्गलिक जगत्) का स्वभाव ही ऐसा है। उसके गुण स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द—आते हैं, मन को लुभा चले जाते हैं।

ये गुण विषय हैं। विषय के आसेवन का फल है—संग। संग का फल है—मोह। मोह का फल है—

बहिर् दर्शन[3] (दृश्य जगत् में आस्था)। बहिर् दर्शन का फल है—'बहिर् ज्ञान' (दृश्य जगत् का ज्ञान) 'बहिर ज्ञान' का फल है—'बहिर् विहार' (दृश्य जगत् में रमण)।

इसकी सार साधना है दृश्य जगत् का विकास, उन्नयन और भोग।

सुखाभास में सुख की आस्था, नश्वर के प्रति अनश्वर का सा

१—(क) सम्यक्-दर्शन आत्म-दर्शन। (ख) सम्यक्-ज्ञान आत्म ज्ञान।
(ग) सम्यक् चरित्र—आत्म-रमण।

२—खणमेत्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा पगाम दुक्खा अणिगाम सुक्खा
—उत्त १४।१३।

३—आचा १।२।५।८।

अनुराग, अहित में हित की सी गति, अभक्ष्य में भक्ष्य का सा भाव, अकर्तव्य में कर्तव्य की सी प्रेरणा—ये सारे विपाक हैं।

विचारणा के प्रौढ़ काल में मनुष्य ने समझा—जो परिणाम भद्र, स्थिर और शाश्वत है वही सार है। इसकी संज्ञा—'विवेक दर्शन' है।

विवेक दर्शन का फल है—विषय-त्याग।

विषय त्याग का फल है – असंग।

असंग का फल है – निर्मोहिता।

निर्मोहिता का फल है—अन्तर दर्शन।

अन्तर-दर्शन का फल है – अन्तर ज्ञान।

अन्तर ज्ञान का फल है—अन्तर विहार।

इस रत्न-त्रयी का समन्वित फल है—आत्म स्वरूप की उपलब्धि-मोक्ष या आत्मा का पूर्ण विराम मुक्ति।

भगवान् ने कहा—गौतम। यह आत्मा (अदृश्य-जगत्) ही शाश्वत सुखानुभूति का केन्द्र है। वह स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द से अतीत है इसलिए अदृश्य, अपौद्गलिक, अभौतिक है। वह चिन्मय स्वभाव से उपयुक्त है इसलिए शाश्वत सुखानुभूति का केन्द्र है[१]।

फलित की भाषा में साध्य की दृष्टि से सार है—आत्मा की उपलब्धि और साधन की दृष्टि से सार है रत्नत्रयी।

इसीलिए भगवान् ने कहा—गौतम। धर्म की श्रुति कठिन है, धर्म की श्रद्धा कठिन-तर है, धर्म का आचरण कठिनतम है[२]।

धर्म श्रद्धा की संज्ञा 'अन्तर दृष्टि' है। उसके पाँच लक्षण हैं—(१) शम (२) संवेग (३) निर्वेद (४) अनुकम्पा और (५) आस्तिक्य।

धर्म की श्रुति से आस्तिक्य दृढ़ होता है।

आस्तिक्य का फल है—अनुकम्पा, अक्रूरता या अहिंसा।

१—औप० सिद्धाधिकार। २—उत्त० १०।१८ २०।

अहिंसा का फल है—निर्वेद-संसार विरक्ति, भोग खिन्नता, भोग से खिन्न होने का फल है - संवेग-मोक्ष की अभिलाषा—धर्म श्रद्धा।

धर्म श्रद्धा का फल है—शम—तीव्रतम क्रोध, मान, माया और लोभ का विलय और नश्वर सुख के प्रति विराग और शाश्वत सुख के प्रति अनुराग[1]।

लोक मे सार यही है।

लोक विजय

गौतम ने पूछा—भगवन्। विजय क्या है ?

भगवान् ने कहा—गौतम। आत्म स्वभाव की अनुभूति ही शाश्वत सुख है। शाश्वत सुख की अनुभूति ही विजय है[2]।

दु ख आत्मा का स्वभाव नही है। आत्मा मे दु ख की उपलब्धि जो है वही पराजय है।

भगवान् ने कहा—गौतम।

जो क्रोध दर्शी है वह मान दर्शी है।

जो मान दर्शी है वह माया दर्शी है।

जो माया दर्शी है वह लोभ दर्शी है।

जो लोभ दर्शी है वह प्रेम दर्शी है।

जो प्रेम-दर्शी है वह द्वेष दर्शी है।

जो द्वेष दर्शी है वह मोह दर्शी है।

जो मोह दर्शी है वह गर्भ दर्शी है।

जो गर्भ दर्शी है वह जन्म दर्शी है।

जो जन्म दर्शी है वह मार-दर्शी है।

जो मार दर्शी है वह नरक-दर्शी है।

जो नरक दर्शी है वह तिर्यक्-दर्शी है।

जो तिर्यक्-दर्शी है वह दु ख दर्शी है[3]।

१—उत्त २९।१ ३। २—उत्त ९।३६। ३—आचा १।३।४।१२६।

दु ख की उपलब्धि मनुष्य की घोर पराजय है। नरक और तिर्यञ्च (पशु पक्षी) की योनि दुखानुभूति का मुख्य स्थान है—पराजित व्यक्ति के लिए बन्दी गृह है।

गर्भ, जन्म और मौत—ये वहाँ ले जानेवाले हैं। वहाँ ले जाने का निर्देशक मोह है।

क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम और द्वेष की परस्पर व्याप्ति है। ये सब मोह के ही विविध रूप हैं।

मोह का माया जाल इस छोर से उस छोर तक फैला हुआ है। यही लोक है।

एक मोह को जीतनेवाला समूचे लोक को जीत लेता है। भगवान ने कहा—गौतम! यह सर्वदर्शी का दर्शन है, यह निःशस्त्र विजेता का दर्शन है, यह लोक विजेता का दर्शन है[१]।

द्रष्टा, निःशस्त्र और विजेता जो होता है—वह सब उपाधियों से मुक्त हो जाता है अथवा सब उपाधियों से मुक्ति पानेवाला व्यक्ति ही द्रष्टा, निःशस्त्र या विजेता हो सकता है[२]।

पराजय और विजय

यह द्रष्टा का दर्शन है, यह शस्त्र हीन विजेता का दर्शन है। क्रोध, मान, माया और लोभ को त्यागनेवाला ही इसका अनुयायी होगा। वह सबसे पहले पराजय के कारणों को समझेगा, फिर अपनी भूलों से निमन्त्रित पराजय को विजय के रूप में बदल देगा[३]।

दु ख सुख का स्वरूप-दर्शन

भगवान् ने कहा—गौतम! "जो दु ख है, वही सुख है, जो दु ख कर्त्ता हैं वे ही सुख कर्त्ता हैं, जितने दु ख के कारण हैं, उतने ही सुख के कारण[४] हैं।"

१—आचा० १।३।४।१२६। २—आचा १।३।४।१२६। ३—आचा० १।३।४।१२२।

४—जे आसवा ते परिसवा जे परिसवा ते आसवा।—आचा० १।४।२।

आसक्त के लिए तपश्चर्या दुःख है। अनासक्त के लिए वही सुख है। आसक्त के लिए पाप कर्म सुख है वही अनासक्त के लिए दुःख है।

आसक्त व्यक्ति इन्द्रिय और मन का असयम के लिए असयम-पूर्वक उपयोग करता है इसलिए वे उसके दुःख हेतु बनते हैं।

अनासक्त व्यक्ति इन्द्रिय और मन का सयम के लिए सयम पूर्वक प्रयोग करता है इसलिए उसके वे सुख-हेतु बनते हैं।

सक्षेप में दुःख के कारण दो है—(१) राग और (२) द्वेष[1]।

सुख के कारण भी इतने ही है—(१) विराग (२) मैत्री।

मध्यम दृष्टि से दुःख के कारण पाच है —

(१) मिथ्या दर्शन—असत्य के प्रति आस्था।

(२) अव्रत आसक्ति, अत्याग, असयम।

(३) प्रमाद—आत्म विकास के लिये उत्साह हीनता की वृत्ति।

(४) कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ।

(५) अशुभ योग—मन, वाणी और शरीर की दुष्प्रवृत्ति और दुष्प्रयोग।

सुख के कारण भी पाच हैं—

(१) सम्यक् दर्शन—सत्य के प्रति आस्था।

(२) व्रत—अनासक्ति, त्याग, सयम।

(३) अप्रमाद—आत्म विकास के लिए उत्साह।

(४) अकषाय—अक्रोध, अमान, अमाया और अलोभ।

(५) (क) शुभ योग—मन, वाणी और शरीर की सुप्रवृत्ति, सुप्रयोग।

(ख) अयोग—मन, वाणी और शरीर का निरोध।

१—उत्त० ३२।७।

विस्तार दृष्टि से दुःख के कारण उतने ही हैं, जितनी की दुष्प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं।

जितनी सुप्रवृत्तियाँ व निवृत्तियाँ हैं, उतने ही सुख के कारण हैं।

दुःख मुक्ति

संसार में जो भी दुःख है वह शस्त्र से जन्मा हुआ है[१]। संसार में जो भी दुःख है वह संग और भोग से जन्मा हुआ है[२]। नश्वर सुख के लिए प्रयुक्त क्रूर शस्त्र को जो जानता है वही अशस्त्र का मूल्य जानता है। जो अशस्त्र का मूल्य जानता है वही नश्वर सुख के लिए प्रयुक्त क्रूर शस्त्र को जान सकता है[३]।

भगवान् ने कहा—गौतम! तू आत्मानुशासन में आ। अपने आपको जीत। यही दुःख मुक्ति का मार्ग है[४]। कामों, इच्छाओं और वासनाओं को जीत। यही दुःख मुक्ति का मार्ग है[५]।

लोक का सिद्धान्त देख—कोई जीव दुःख नहीं चाहता। तू भेद में अभेद देख—सब जीवों में समता देख। शस्त्र प्रयोग मत कर। दुःख मुक्ति का मार्ग यही है[६]।

कषाय विजय, काम विजय या इन्द्रिय विजय, मनो विजय, शस्त्र विजय और साम्य दर्शन—ये दुःख मुक्ति के उपाय हैं। जो साम्य दर्शी होता है वह शस्त्र का प्रयोग नहीं करता। शस्त्र विजेता का मन स्थिर हो जाता है। स्थिर चित्त व्यक्ति को इन्द्रियां नहीं सतातीं। इन्द्रिय विजेता के कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) स्वयं स्फूर्त नहीं होते।

दुःख मुक्ति ही लोक विजय है।

अप्रतिस्पर्धा

जो एक को नमा लेता है वह सबको नमा लेता है। जो सबको

१—आचा १।३।३।११९। २—उत्त ३२।१९।
३—आचा० १।३।१।११०। ४—आचा० १।३।३।११९।
५—दश० २।५। ६—आचा० १।३।१।१०७।

नमा लेता है वही एक को नमा सकता है[१]। जो एक को खपाता है, वह सबों को खपा देता है, जो सबों को खपाता है वही एक को खपा सकता है[२]। शस्त्र के द्वारा नमाना और खपाना प्रतिस्पर्धा का स्थान है। वह पराजय है।

जिस विजय के लिए शस्त्र बनाने व चलाने पड़ वह प्रतिस्पर्धा का स्थान है। वह पराजय है। जो सशस्त्र है वह सभय है—वह पराजित है। जो अशस्त्र है वह अभय है—वह विजयी है[३]। शस्त्र स्पर्धा का स्थान है। एक शस्त्र को व्यर्थ करने के लिए दूसरे का निर्माण होता है। उसके लिए तीसरे का। यह क्रम आगे से आगे बढ़ता है[४]।

अस्ति शस्त्र परेण परम्—यह ध्रुव सत्य है।

अणुबम व उद्जन बम का निर्माण इसी सत्य की प्रतिध्वनि है। अशस्त्र में स्पर्धा नहीं होती[५]।

अभय

लोक विजय का मार्ग अभय है। कोई भी व्यक्ति सर्वदा शस्त्र-प्रयाग नहीं करता, किन्तु शस्त्रीकरण से दूर नहीं होता, उससे सब डरते हैं[६]।

अणुबम का प्रयोग भूमि केवल जापान है। उसकी भय व्याप्ति सभी राष्ट्रों में है।

जो स्वय अभय होता है वह दूसरों को अभय दे सकता है। स्वय भीत दूसरों को अभीत नहीं कर सकता।

प्रतिष्ठा का व्यामोह

"आज तक नहीं किया गया, वह करूँगा"—इस भूल भुलैया में

१—आचा १।३।४।१२४। २—आचा १।३।४।१२५।
३—आचा० १।३।४।१२५। ४—आचा० १।३।४।१२५।
५—आचा० १।३।४।१२५। ६—आचा० १।३।६।५१।

विस्तार दृष्टि से दु ख के कारण उतने ही हैं, जितनी की दुष्प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं।

जितनी सुप्रवृत्तियाँ व निवृत्तियाँ हैं, उतने ही सुख के कारण हैं।

दु ख मुक्ति

ससार म जो भी दु ख है वह शस्त्र से जन्मा हुआ है[१]। ससार मे जो भी दु ख है वह सग और भाग से जन्मा हुआ है[२]। नश्वर सुख के लिए प्रयुक्त क्रूर शस्त्र को जो जानता है वही अशस्त्र का मूल्य जानता है। जो अशस्त्र का मूल्य जानता है वही नश्वर सुखके लिए प्रयुक्त क्रूर शस्त्र को जान सकता है[३]।

भगवान् ने कहा—गौतम। तू आत्मानुशासन मे आ। अपने आपको जीत। यही दु ख मुक्तिका मार्ग है[४]। कामों, इच्छाओ और वासनाओं को जीत। यही दु ख मुक्ति का मार्ग है[५]।

लोक का सिद्धान्त देख—कोई जीव दु ख नहीं चाहता। तू भेद में अभेद देख—सब जीवों म समता देख। शस्त्र-प्रयोग मत कर। दु ख मुक्ति का माग यही है[६]।

कपाय विजय, काम विजय या इन्द्रिय विजय, मनो विजय, शस्त्र विजय और साम्य दर्शन—ये दु ख मुक्ति के उपाय है। जो साम्य दर्शी होता है वह शस्त्र का प्रयोग नहीं करता। शस्त्र विजेता का मन स्थिर हो जाता है। स्थिर चित्त व्यक्ति को इन्द्रियाँ नहीं सतातीं। इन्द्रिय विजेता के कपाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) स्वय स्फूर्त नहीं होते।

दु ख मुक्ति ही लोक विजय है।

अप्रतिस्पर्धा

जो एक को नमा लेता है वह सबको नमा लेता है। जो सबको

१—आचा १।३।३।११९। २—उत्त० ३२।१९।
३—आचा० १।३।१।११०। ४—आचा १।३।३।११९।
५—दश० २।५। ६—आचा १।३।१।१०७।

नमा लेता है वही एक को नमा सकता है[1]। जो एक को खपाता है, वह सबों को खपा देता है, जो सबों को खपाता है वही एक को खपा सकता है[2]। शस्त्र के द्वारा नमाना और खपाना प्रतिस्पर्धा का स्थान है। वह पराजय है।

जिस विजय के लिए शस्त्र बनाने व चलाने पड़े वह प्रतिस्पर्धा का स्थान है। वह पराजय है। जो सशस्त्र है वह सभय है—वह पराजित है। जो अशस्त्र है वह अभय है—वह विजयी है[3]। शस्त्र स्पर्धा का स्थान है। एक शस्त्र को व्यर्थ करने के लिए दूसरे का निर्माण होता है। उसके लिए तीसरे का। यह क्रम आगे से आगे चलता है[4]।

अस्ति शस्त्र परेण परम्—यह ध्रुव-सत्य है।

अणुबम व उद्‌जन बम का निर्माण इसी सत्य की प्रतिध्वनि है। अशस्त्र में स्पर्धा नहीं होता[5]।

अभय

लोक विजय का मार्ग अभय है। कोई भी व्यक्ति सर्वदा शस्त्र-प्रयोग नहीं करता, किन्तु शस्त्रीकरण से दूर नहीं होता, उससे सब डरते हैं[6]।

अणुबम का प्रयोग भूमि केवल जापान है। उसकी भय व्याप्ति सभी राष्ट्रों में है।

जो स्वयं अभय होता है वह दूसरों को अभय दे सकता है। स्वयं भीत दूसरों को अभीत नहीं कर सकता।

प्रतिष्ठा का व्यामोह

"आज तक नहीं किया गया, वह करूँगा"—इस भूल भुलैया में

१—आचा० १।३।४।१२४। २—आचा० १।३।४।१२५।
३—आचा० १।३।४।१२५। ४—आचा० १।३।४।१२५।
५—आचा० १।३।४।१२५। ६—आचा० १।१।६।५१।

फसे हुए लोग भटक जाते हैं। वे दूसरा को डराते हैं, सताते हैं, मारते हैं, लूट खसौट करते हैं[१]।

वे नहीं जानते कि मौत के करोडों दरवाजे हैं[२]।

जीवन दौड रहा है।

वे नहीं देखते कि मौत के लिए कोइ दिन छुट्टी का नहीं है[३]।

जीवन नश्वर है।

वे नहीं सोचते कि मौत के समय कोई शरण नहीं देता[४]।

जीवन अत्राण है।

यह पराजय है।

चेतना का जागरण

भगवान् ने कहा - पुरुष। तू किसी को मत मार।

मत सता।

शासन मत कर।

अधीन मत बना।

दास मत बना।

आधि-व्याधि मत पैदा कर।

यही शाश्वत सत्य है।

यही ध्रुव धर्म है।

यही विशुद्ध है।

यही है विजय का मार्ग।

यही है परम-तत्त्व की उपासना।

इस निःशस्त्र विजय के मन्त्र ने चैतन्य को ऊर्ध्वगामी बना दिया।

१—आचा० १।२।१।६७।

२—नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि—आचा १।४।२।१३२।

३—नत्थि कालस्स णा गमो—आचा १।२।३।८१।

४—आचा १।२।१।६७।

जो पवन के ठंडे और गरम भाव में सम है, अरति और रति में सम है, उसे कष्टानुभूति नहीं होती।

वह सदा जागता है, वह वैर से परे है, वह वीर है। पराजय से मुक्त वही होगा[1]।

अहिंसक के लिए क्या सुख? क्या दुःख? वह इनसे परे है[2]। कष्ट सहन के बिना जो विवेक आता है, वह कष्ट सहन का अवसर आने पर चला जाता है। इसलिए कष्ट-सहन का अभ्यास साधना का अंग है। साधक वही है जो यथा शक्ति काय क्लेश के द्वारा आत्मा को सुसंस्कृत करे।

> अदुःखैभावितं ज्ञानं, क्षीयते दुःखसन्निधौ।
> तस्माद् यथा बलं दुःखैः, रात्मानं भावयेद् मुनिः[3]॥

उपशम

मानसिक सन्तुलन के बिना कष्ट सहन की क्षमता नहीं आती। उसका उपाय उपशम है। व्याधियों की अपेक्षा मनुष्य को आधियाँ अधिक सताती हैं। हीन-भावना और उत्कर्ष भावना की प्रतिक्रिया दैहिक कष्टों से अधिक भयंकर होती है, इसीलिए भगवान् ने कहा—जो निर्मम और निरहंकार है, निःसंग है, ऋद्धि, रस और सुख के गौरव से रहित है, सब जीवों के प्रति सम है, लाभ अलाभ सुख दुःख जीवन मौत, निन्दा प्रशंसा, मान अपमान में सम है, अकषाय, अदण्ड, निःशल्य और अभय है, हास्य, शोक और पौद्गलिक सुख की आशा से मुक्त है, ऐहिक और पारलौकिक बन्धन से मुक्त है, पूजा और प्रहार में सम है, आहार और अनशन में सम है, अप्रशस्त वृत्तियों का संवरक है, अध्यात्म ध्यान और योग

१—आचा १।३।१।१ १। २—आचा १।३।३।११८।

३—समा १ २।

में लीन है, प्रशस्त आत्मानुशासन में रत है, श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और तप में निष्ठावान् है—वही भवित—आत्मा श्रमण है[१]।

भगवान् ने कहा—कोई श्रमण कभी कलह मे फँस जाय तो वह तत्काल सम्हलकर उसे शान्त कर दे। वह क्षमा याचना कर ले। सम्भव है दूसरा श्रमण वैसा करे या न करे, उसे आदर दे या न दे, उठे या न उठे, वन्दना करे या न करे, साथ में खाये या न खाये, साथ में रहे या न रहे, कलह को उपशान्त करे या न करे, किन्तु जो कलह का उपशमन करता है वह धर्मकी आराधना करता है, जो उसे शान्त नहीं करता उसके धर्मकी आराधना नहीं होती। इसलिए आत्मगवेषक श्रमण को उसका उपशमन करना चाहिये।

गौतम ने पूछा—भगवन्! उसे अकेले को ही ऐसा क्यों करना चाहिए?

भगवान् ने कहा—गौतम! श्रामण्य उपशम प्रधान है। जो उपशमन करेगा वही श्रमण, साधक या महान् है[२]।

उपशमन विजय का मार्ग है। जो उपशम प्रधान होता है, वही मध्यस्थ भाव और तटस्थ-नीति को बरत सकता है।

नेतृत्व का महत्त्व

जो व्यक्ति शस्त्र प्रयोग के द्वारा दूसरों को जीतना चाहते हैं—वे दिग् मूढ़ हैं। लोक विजय के लिए शस्त्रीकरण को प्रोत्साहन देनेवाले जनता को घोर अन्धकार में ले जा रहे हैं। वे कल्याण-कारक नेता नहीं हैं। दिग् मूढ़ नेता और उसका अनुगामी समाज, ये दोनों अन्तमें पछताते हैं[३]। अन्धा अन्धों को सही पथ पर नहीं ले जा सकता[४]। इसलिए नेतृत्व का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। सफल नेता वही हो सकता

१—उत्त० १९ ८१।९४। २—वृह० १।३५।
३—सूत्र० १।१।२।१८। ४—सूत्र० १।१।२।१९।

है जो दूसरों के अधिकारों को कुचले बिना निजी स्रोतों को विकासशील बनाए।

पाण्डित्य

जो समय को समझता है, उसका मूल्य आंकता है वह पण्डित है[१]। वह व्यामूढ़ नहीं बनता। वह समय को समझकर चलता है। मूढ़ व्यक्ति मोह के भार से दब जाता है। वह न आर गामी होता है और न पार गामी न इधर का रहता है और न उधर[२] का। जो व्यक्ति अलोभ से लोभ को जीतते हैं वे पारगामी हैं, जन मानस के सम्राट हैं[३]।

लोक विजय के लिए जन बल और शस्त्र-बल का संग्रह और प्रयोग करनेवाले अदूरदर्शी हैं[४]। दूरदर्शी जो होते हैं वे शस्त्र प्रयोग न करते, न करवाते और न करनेवाले का समर्थन ही करते। लोक विजय का यही मार्ग है। इसे समझनेवाला कहीं भी नहीं बंधता। वह अपनी स्वतन्त्र बुद्धि और स्वतन्त्र गति से चलता है[५]।

साम्य योग

जाति और रंग का गर्व कौन कर सकता है? यह जीव अनेक बार ऊंची और अनेक बार नीची जाति में जन्म ले चुका है।

यह जीव अनेक बार गोरा और अनेक बार काला बन चुका है।

जाति और रंग ये बाहरी आवरण हैं।

ये जीव को हीन और उच्च नहीं बनाते।

बाहरी आवरणों को देख जो हृष्ट व रुष्ट होते हैं वे मूढ़ हैं।

प्रत्येक व्यक्ति में स्वाभिमान की वृत्ति होती है। इसलिए किसी

१—आचा १।२।१।७१।

२—मंदा मोहेण पाउडा—नो हव्वाए नो पाराए—आचा० १।२।२।७४।

३—आचा १।२।२।७५। ४—आचा १।२।२।७६।

५—आचा १।२।२।७७।

के प्रति भी तिरस्कार, घृणा और निम्नता का व्यवहार करना हिंसा है, व्यामोह है[1]।

आत्मा का सम्मान

आत्मा से आत्मा का सजातीय सम्बन्ध है। पुद्गल उसका विजातीय-तत्त्व है। जाति और रंग रूप ये पौद्गलिक हैं। सजातीय की उपेक्षा कर विजातीय को महत्व देना प्रमाद है।

चक्षुष्मन्! तू देख, जो प्रमादी हैं वे स्वतन्त्रता से कोसों दूर हैं[2]। प्रमादी को चारों ओर से डर ही डर लगता है। अप्रमादी को कहीं भी डर नहीं दीखता[3]।

जहाँ जाति, कुल, रंग रूप, शक्ति, ऐश्वर्य, अधिकार, विद्या और तपस्या का गर्व है वहाँ आत्मा का तिरस्कार है। आत्मा का सम्मान करनेवाला ही नम्र होता है। वह ऊँचा उठता है[4]।

पुद्गल का सम्मान करनेवाला उद्धत है वह नीचे जाता है[5]।

आत्मा का सर्व सम-सत्ता को सम्मान देनेवाला ही लोक-विजेता बन सकता है।

१—आचा० १।२।३।७८। २—आचा० १।५।२।१५१।
३—आचा० १।३।४।१२४। ४—सग०। ५—

परिशिष्ट

ग्रंथ-संकेत

ग्रन्थ नाम	संकेत
१—आचारांग सूत्र	आचा०
२—उत्तराध्ययन सूत्र	उत्त०
३—औपपातिक सूत्र	औप०
४—दशवैकालिक सूत्र	दश०
५—प्रश्नव्याकरण सूत्र	प्रश्न०
६—भगवती सूत्र	भग०
७—राजप्रश्नीय सूत्र	राज०
८—बृहत्कल्प सूत्र	बृह०
९—समाधि शतक	समा०
१०—सूत्रकृताङ्ग सूत्र	सूत्र०
११—स्थानाङ्ग सूत्र	स्था०